जौनसारी-बावरी भाषा एवं लिपि का उन्नयन, संवर्द्धन एवं संरक्षण

डॉ० राजपाल सिंह चौहान
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राजकीय महाविद्यालय वेदीखाल, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना

जौनसारी-बावरी भाषा एवं लिपि का सामान्य परिचय: जौनसारी बावरी भाषा एवं लिपि पर विचार व्यक्त करने से पूर्व भाषा की उत्पत्ति पर विचार करना वांछनीय है। मनुष्य भाषा युगों से बोलता आ रहा है, किन्तु आज तक यह बात प्रमाणित नहीं हो पायी कि भाषा का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ ? प्रसिद्ध विद्वान मेरिओ- पाई के अनुसार कि समस्त भाषा वैज्ञानिक केवल इस बात पर एक मत हो जाते है, कि भाषा की उत्पत्ति का संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता है। सत्य तो यह है कि वर्तमान पीढ़ी ने भाषा अपने पूर्वजों से सीखी तथा पूर्वजों ने अपने पूर्वजों से सीखने का यह क्रम मानव समाज में आदिम काल ने चला आ रहा है। इस परम्परा के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया जा चुका है। इन सिद्धान्तों में सर्वप्रथम अधिकांश धर्माचार्यो द्वारा मान्य सिद्धान्त देवीय उत्पत्तिवाद है।

देवीय उत्पत्तिवाद सिद्धान्त के अनुसार भाषा एक ईश्वरीय देन है जो सृष्टि की भान्ति एकाएक उत्पन्न हुई। विभिन्न धर्माचार्यो ने इस सिद्धान्त पर अपनी सहमति व्यक्त की है तथा अपनी-अपनी धर्म पुस्तकों की भाषा को आदि भाषा स्वीकार किया है । तथा हिन्दुओं ने संस्कृत भाषा को बौद्धों ने पाली भाषा को जैनों ने प्राकृत को, कैथोलिक ईसाईयों ने हिब्रू भाषा को तथा मुसलमानों ने कुरान की भाषा को आदि भाषा सिद्ध किया है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि "देवी वाचमजनय देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति" अर्थात प्राणुरूप देवों ने जिस प्रकाशवान बैखरी वाणी को उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकार के प्राणी बोलते है। **(ऋगवेद 8-1090-11)**

भाषा विचार विनिमय का यह सर्वसुलभ साधन है, जिसके द्वारा हम अपने भावों विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं तथा दूसरों के भावों- विचारों को ग्रहण करते हैं इसलिए भाषा समाज की वह अमूल्य निधि है, जिससे सम्पूर्ण समाज के गूँगेपन को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। भारत एक विविधता वाला राष्ट्र है । यहाँ पर अनेकानेक भाषा एवं बोलियाँ बोली जाती है इसलिए इस सन्दर्भ हेतु यह उक्ति सटीक चरितार्थ होती है कि “कोस कोस में पानी बदले, चार कोस पर बानी" भाषा बोली के इन नानारूपों में उत्तराखण्ड राज्य के जनपद देहरादून के अन्तर्गत स्थित जनजाति क्षेत्र जौनसार-बावर अपनी मौलिक संस्कृति और भाषा की अनमोल विरासत के लिए विश्व के मानचित्र पर विख्यात है किसी भी देश जाति एवं समाज की वास्तविक पहचान उसके साहित्य, संस्कृति एवं कला द्वारा होती है। साहित्य, संस्कृति और कला के साथ-साथ समाज का क्रमिक विकास होता है। और इन सब के लिए हमे भाषाश्रित होना पड़ता है क्योंकि भाषा ही हमारे सम्पूर्ण विकास यात्रा को अभिव्यक्ति प्रदान करती है और उसे जन जन तक पहुंचाती है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1- जौनसारी-बावरी भाषा का सम्बर्द्धन करना

2- जौनसारी-बावरी भाषा को संरक्षण प्रदान करना।

3- जौनसारी- बावरी भाषा का विकास करना

4. जौनसारी बावरी भाषा के साहित्य को लिपिबद्ध करना।

5 जौनसारी - बावरी भाषा का प्रचार-प्रसार करना जौनसारी बावरी भाषा के प्रति शोधकर्ताओं एवं साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना।

विषय का महत्त्व:- हिन्दी भाषा एवं उसके वाड.मय सर्वागीण विकास और समृद्धि में भारतीय भाषायें एवं प्रादेशिक भाषाओं, उपभाषा बोलियों अर्थात आँचलिक भाषाओं का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह बात नितांत सत्य है कि हिन्दी की सतत् प्रवाहमान धारा में आँचलिक भाषाओं की अनेकानेक धाराएं से मिलकर हिन्दी भाषा को सर्वजननीय एवं मंगलकारी बनाने का उपक्रम आरम्भ से करती आ रही है, यह क्रम अनवरत चलता रहेगा। अब इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि हिन्दी भाषा के उन्नयन की दिशा में किए जाने वाले प्रयास तब तक फलीभूत नहीं होंगे जब तक हिन्दी भाषा को सम्पुष्ट और परिपुष्ट बनाने वाली आँचलिक भाषाओं का सम्बर्द्धन एवं संरक्षण नहीं किया जायेगा। तथा उसकी साहित्यिक गतिविधियों पर परिचयात्मक पुस्तको का सही रूप में प्रणयन नहीं किया जाएं। प्रान्तों की इन आँचलिक भाषाओं की अपनी-अपनी निजी विशेषताएं है और उनका साहित्य भी समृद्ध है।

"जौनसारी-बावरी भाषा एवं उसका साहित्य अल्प मात्रा में उपलब्ध है। यूनेस्को द्वारा हाल ही में किए गये भाषा सर्वेक्षण में पाया कि विश्व की लगभग दो हजार पाँच सौ भाषाएं विलुप्तिकरण की कगार पर खड़ी है, यूनेस्को के अनुसार भारत में एक सौ सत्तानवें भाषाएं संकटग्रस्त है जिनमें से 81 सवेदनशील है 63 निश्चित रूप से संकटग्रस्त है, छह गम्भीर रूप से संकटग्रस्त है और ४२ भाषाएँ अत्यंत संकटग्रस्त है तथा विलुप्तिकरण के कगार पर खड़ी है इस दृष्टि से जौनसारी-बावरी भाषा भी विलुप्तिकरण के कगार पर खड़ी है । इसी दृष्टि से इस भाषा का सम्बर्द्धन एवं संरक्षण आवश्यक है तथा जौनसारी- बावरी लोकसाहित्य को लिपिबद्ध कर इसे भावी पीढ़ी तक पहुँचाया जा सकता है, क्योंकि पलायन, शिक्षा, चिकित्सा एवं रोजगार के कारणों से लोग इस अंचल-विशेष से पृथक हो गये है, और जौनसारी बावरी भाषा जन व्यवहार से दूर होती जा रही है, अर्थात इस भाषा का प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। उसके पीछे हमारा हिन्दी भाषा और अंग्रेजी भाषा के प्रति लगाव के कारण भी जौनसारी बावरी भाषा व्यवहारिक रूप से कम प्रचलन में है। वर्तमान पीढ़ी के लोग अपने बच्चों के साथ क्षेत्रीय भाषा में वार्तालाप करने में असहज महसूस करते है अर्थात जौनसारी-बावरी भाषा में बातचीत करने में शर्म महसूस करते हैं और अपनी भाषा-बोली को अगली पीढ़ी को हस्तानांतरित नहीं करते हैं, जिसके कारण धीरे-धीरे यह भाषा विलुप्तिकरण की ओर अग्रसर हो रही है|

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आजकल के अभिभावक अपने बच्चों को जौनसारी बावरी भाषा में बातचीत करना तो दूर जौनसारी लोकगीतों को भी सुनना एवं सिखाना भी पसंद नहीं करते हैं अपितु अंग्रेजी भाषा की कविताएं एवं अंग्रेजी भाषा मे संवाद करने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं और बचपन से ही बच्चों को मोम, डेड, ग्रांडफादर, ग्रांडमदर आदि अंग्रेजी भाषा को संस्कार के रूप हस्तानांतरित करने में स्वयं को सभ्य समाज के प्रतिष्ठित नागरिक समझते हैं। यद्यपि जौनसारी भाषा को हम यह तो नहीं मान सकते है कि अत्यंत संकटग्रस्त है लेकिन असुरक्षित जरूर है, अभी दो पीढ़ियां इस भाषा का प्रयोग व्यवहारिक रूप से कर रही है लेकिन भविष्य में केवल यह भाषा केवल एक पीढ़ी तक ही सीमित रह जायेगी और धीरे धीरे अगली पीढ़ी तक समाप्त हो जायेगी। इसलिए इस भाषा का सम्बर्द्धन एवं संरक्षण करना अत्यंत वांछनीय है।

भाषा किसी भी संस्कृति की पोषक होती है भाषा ही संस्कृति को जीवंत रूप प्रदान करती है। भाषा संस्कृति का वह प्राथमिक तत्व है जिससे संस्कृति विकास पथ पर अग्रसर होती है, यदि भाषा ही विलुप्त हो जायेगी तो संस्कृति भी विलुप्त हो जायेगी। भाषा ही सम्पूर्ण समाज को अभिव्यक्ति प्रदान करती है चाहे वह भले ही मौखिक रूप में व्यवहार में हो। भाषा ही समाज की पहचान होती है भाषा से ही यह ज्ञात होता है कि अमूक व्यक्ति अमूक समाज से सम्बन्धित है, जौनसारी बावरी भाषा से ही हमें जौनसारी-बावरी समाज की पहचान दिलाती है। यदि जौनसारी-बावरी भाषा विलुप्त हो जायेगी तो हमारी संस्कृति, समाज, साहित्य सब कुछ विलुप्त हो जायेगा। इसलिए उसके सम्बर्द्धन, संरक्षण एवं उन्नयन का अत्यंत महत्व है ताकि इस भाषा के संबर्धित संरक्षित एवं लिपिबद्ध कर भावी पीढ़ी को हस्तानांतरित किया जा सके। भाषा तभी तक जीवित रहती है जब एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को तथा दूसरी पीढ़ी तीसरी पीढ़ी को हस्तानांतरित करती रहें |

जनजातिय क्षेत्र जौनसार-बावर में मूलतः भाषा के तीन रूप दृष्टिगोचर होते है जौनसार-बावर की तीन तहसीलों क्रमशः कालसी एवं चकराता में जौनसारी भाषा एवं त्यूनी तहसील एवं चकराता तहसील के सीमान्त पट्टियों में बावरी कणवानी भाषा का प्रयोग किया जाता है। जौनसारी बावरी भाषा को अध्ययन की दृष्टि से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है |

१. पूर्वी जौनसारी
२. पश्चिमी बावरी एवं कणवानी
३. उत्तरी जौनसारी

४. दक्षिणी जौनसारी

पूर्वी जौनसारी के अन्तर्गत जौनसार बावर की खतें क्रमशः लखवाड, फरटाड, बहलाड, सीली, कोरू, सेली खत की भाषा को समिल्लित किया जा सकता है | पश्चिमी जौनसारी में बावर की खतों की कणवानी खतों की बोली, उत्तरी जौनसारी के अंतर्गत वणगांव, तपलाड, बौन्दूर, मोहना खतों की भाषा एवं बोली को समिल्लित किया जा सकता है| तथा दक्षिणी जौनसारी के अन्तर्गत – बमटाड, अठगाँव, विशाइल खत तथा पशगाँव खतों की भाषा बोली को समिल्लित किया जा सकता है |

यह वर्गीकरण इसलिए आवश्यक है क्योंकि सम्पूर्ण जौनसार-बावर में वर्तनी उच्चारण में सामान्य अन्तर है। यहाँ तक जौनसार-बावर में परगना (पट्टी) खतों के आधार पर लयात्मक वैविध्य सर्वत्र दिखाई देता है। और दक्षिणी, जौनसारी भाषा में शब्दों और दैनिक उपयोग की वस्तुओं के नाम एवं उच्चारण में पर्याप्त भिन्नताएं है। पूर्वी जौनसारी भाषा एवं उत्तरी जौनसारी भाषा तथा दक्षिणी जौनसारी भाषा मे लयात्मक वैविध्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। लेकिन पश्चिमी जौनसारी बावरी कनवानी भाषा में लयात्मक वैविध्य में वैविष्य के साथ-साथ उच्चारण वैविध्य शब्द योजना वैविध्य एवं वाक्य गठन में भी पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। यथा पूर्वी जौनसारी भाषा में मेरे टागाऊंदी रोई पीड लागि । मेरे टागाऊंदे रोवे किटकाट हई | पश्चिमी जौनसारी बावरी भाषा में बांगडे लागे चिडगाई मास्ता । उत्तरी जौनसारी बावरी भाषा में मेरे गौडिउदी रोई ढाव लागि । दक्षिणी जौनसारी भाषा मेरे लाताउन्दे रोवे किटकाट हई ।

इस प्रकार इस अंचल जौनसारी जनजातीय क्षेत्र विशेष में बोलीगत वैविध्य के साथ-साथ इसमें पर्याप्त साम्य भी दृष्टिगोचर होता है। इसमें लयात्मक वस्तुगत वैविध्य होने पर यह एक पृथक भाषा है तथा इसकी चार उपभाषाएं (बोलियां) है। जौनसारी भाषा की एक पृथक लिपि है जिसे जौनसारी लिपि या सांचे की लिपि कहा जा सकता है। इस लिपि की प्रमुख विशेषता यह है यह अन्य लिपियों की भाँति जटिल नहीं है यह अत्यंत सहज एवं सरल है। इसे एक अनपढ़ व्यक्ति भी बड़ी सहजता से सीख सकता है। तथा इसे आत्मसात करके इसका अनुकरण करने लगता है। आज से लगभग 200-300 वर्ष पूर्व इस जनजातिय क्षेत्र के लोग हिन्दी बोलना एवं लिखना नहीं जानते थे तथा जौनसारी भाषा का ही प्रयोग करते थे तथा पत्राचार आदि के लिए जौनसारी लिपि का ही प्रयोग किया जाता था। जौनसारी भाषा एवं लिपि को अनपढ़ पिता अपने अनपढ पुत्र को इस विद्या को मौखिक रूप में अपनी ही पीढ़ी को सिखाते थे और अत्यंत सूक्ष्म समय मे ही उस विद्या मे दक्ष हो जाते थे। दुर्भाग्य की बात यह है कि यह लिपि जनसाधारण की लिपि नहीं बन पाई। क्योंकि यह लिपि पुरोहितों के आजीविका के साधन के रूप में इनके धार्मिक ग्रंथों वागोई एवं सांचों तक ही सीमित रह गई। और इस लिपि का विकास नहीं हो पाया। यह लिपि केवल पुरोहितों में पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही वर्ग तक हस्तान्तरित होती रही।

जौनसारी-बावरी भाषा की उत्पत्ति भी अन्य भाषाओं की उत्पत्ति भाँति रहस्यमयी है. यह बात अत्यंत कठिन है कि इस भाषा की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? यह कहना अत्यंत दुःसाध्य है। यह बात नितांत सत्य है, कि आज तक इस भाषा मे साहित्य सृजन नहीं हुआ है, जिसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव एवं जागरूकता तथा परम्परागत व्यवसाय का प्रचलन रहा है यहाँ पर उल्लेख करना समीचीन है कि जौनसारी बावरी भाषा की अपनी एक प्राचीन लिपि है जो कतिपय कारणों से जन साधारण के व्यवहार में नहीं आ पाई तथा केवल ब्राह्मणों के ज्योतिष ग्रंथों में व्यावसायिक दृष्टिकोण हेतु कैद होकर रह गई तथा मंद गति से विकास के पथ पर साँचे एवं बागोईयों में अग्रसर होती रही है। यदि इस लिपि का प्रचार-प्रसार एवं विकास हुआ होता तो वर्तनी एवं उच्चारण की समस्या से निजात मिल गया होता और जौनसारी-बावरी साहित्य सृजन का श्रीगणेश भी बहुत पहले हो चुका होता।"

इस लिपि का उद्भव इसी पर्वतान्चल में हुआ है लेकिन यह नितांत कठिन कार्य है कि उस व्यक्ति विशेष का नामोल्लेख किया जाय जिसने सर्वप्रथम इस लिपि को स्वरूप दिया है। वास्तव में इस लिपि के उद्भव एवं विकास की यात्रा कथा पाषाण काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न भाषाओं की लिपियों के उद्भव एवं विकास की भाँति रहस्यमयी है। इस लिपि को किस विद्वान ने किस शताब्दी में सर्वप्रथम स्वरूप दिया कहना अत्यंत दुःसाध्य है। यहाँ पर यह उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है कि इस लिपि के रूप जौनसार-बावर हिमाचल प्रदेश, पंजाब, कश्मीर जनपद टेहरी गढ़वाल के जौनपुर एवं उत्तरकाशी के रवाँई आदि क्षेत्रों में भ्रूण रूप में उत्पन्न हुए है।

इस लिपि की उत्पत्ति एवं नामकरण के सन्दर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मत वैविध्य हैं। कुछ विद्वानों का स्पष्ट मत है कि इस लिपि की उत्पत्ति हजारों वर्ष पूर्व जब से इस अंचल विशेष में मानव जीवन का प्रादुर्भाव हुआ उसी के साथ-साथ इस लिपि का जन्म भी हुआ लेकिन सर्वप्रथम इस लिपि को जन्म एवं स्वरूप किस विद्वान ने दिया इस सन्दर्भ में कोई मत प्रतिपादित नहीं किया गया है। एक मत के अनुसार इस लिपि के उद्भव का देवीय उत्पत्तिवाद का सिद्धान्त भी माना गया है, एक जन श्रुति के अनुसार काडकाएं एवं चाँदडाए जौनसार बावर एवं

हिमाचल प्रदेश के सीमान्त गांव में इस लिपि का जन्म हुआ मानते है। मान्यता कि इसी गाँव के एक ब्राहमण को सपना आया कि उनके गांव के एक खेत में मट्टी पर यह लिपि ईश्वर द्वारा लिखी गई है। तो अगले दिन प्रातः जब वह ब्राहमण उस स्थान पर पहुँचा तो वास्तव में उसे मिट्टी पर उस लिपि के चिह्न उखेरे हुए दिखे तथा ईश्वर ने ही उसे इस लिपि को पढ़ने की शक्ति भी दी। फिर उस ब्राह्मण ने अपने गाँव के अन्य ब्राह्मणों को भी इस लिपि की वर्णमाला की शिक्षा दी। और इस लिपि को पढ़ने एवं लिखने में दक्ष बनाया। इस प्रकार इस लिपि के उत्पत्ति को ईश्वरीय देन अर्थात दैवीय उत्पत्तिवाद का सिद्धान्त माना गया ।

दूसरे मत के अनुसार कुछ विद्वानों का स्पष्ट मत है कि इस लिपि का उद्भव महाभारत कालीन सभ्यता के साथ इस क्षेत्र में हुआ। इन विद्वानों का मत है कि जब पाण्डव अपने अज्ञातवास के समय में लाखामण्डल के लाक्षागृह में आये थे तो लाक्षागृह में आग लगने के कारण वे प्राचीन नगर एकाचक्री नगरी वर्तमान नगर चकराता में एक ब्राह्मण के यहाँ ठहरे थे। उसके उपरान्त वहाँ पर उन्होंने बकासूर नामक दैत्य का वध किया एवं उसके उपरान्त चकराता लगभग 20 किलोमीटर दूरी पर स्थिति विराटगढ़ वर्तमान वैराटखाई में अलग-अलग वेश-भूषा धारण कर राजा विराट के यहाँ पर नौकरी करने लगे। पाण्डवों के सबसे छोटे भ्राता सहदेव ने पंडिताई का कार्य किया। इसलिए वही इस लिपि को अपने साथ लेकर आये। इसलिए इन विद्वानों ने इस लिपि का नामकरण पंडवाणी लिपि माना है। इसलिए कुछ विद्वान इस लिपि का शुभारम्भ इस अंचल विशेष में पाण्डव कालीन सभ्यता से जोड़ते हैं। कुछ विद्वान ने इस लिपि का उद्भव कुलाधिदेव संचायनी शक्ति महासू के उत्पत्ति के साथ ही इस लिपि की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं । इन विद्वानों की मान्यता है कि जब कुणु काश्मीर से महासू देवता को दैत्यों के अत्याचार से मुक्ति हेतु जौनसार बावर में लाया गया तो यह लिपि भी इन्हीं के साथ कश्मीर से यहाँ पर आई । इसलिए कुछ विद्वान इसे काश्मीरी विद्या लिपि कह कर सम्बोधित करते है और भ्रान्तिवश इसे खरोष्ठी लिपि के नाम से अभिहित करते हैं । जबकि मैंने अपने अध्ययन में पाया कि खरोष्ठी लिपि का एक भी वर्ण इस लिपि में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसलिए इस लिपि को खरोष्ठी लिपि कहना प्रसांगिक नहीं है।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस लिपि का उद्भव सर्वप्रथम हिमाचल प्रदेश के तथा जौनसार बावर के सीमांत गाँवों खाड़काएं एवं चांदणाएँ नामक स्थानों से मानते हैं इन विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीनकाल में जितने भी जोतिषग्रंथ, जिसे जौनसार-बावर में बागोई के नाम से पुकारा जाता है अर्थात बागोई शब्द भाग्यवही शब्द का अपभ्रंश रूप है। ये बागोई इन्हीं दोनो स्थानों पर लिपिबद्ध किया जाते थे । जब यहाँ का ब्राह्मण वर्ग यहाँ पर पण्डिताई का कार्य किया करते थे तो ये दोनों क्षेत्र एक ही रियासत के अंग थे । इसलिए इन विद्वानों का मत है कि इस लिपि का जन्म खण्डकाएँ एवं चादणारे नामक गांवों में हुआ, इसलिए उन्होंने इस लिपि खाड़काएं एवं चांदणाएँ लिपि के नाम से अभिहित किया।

निष्कर्ष:

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह मूलतः जौनसारी लिपि है इसका जन्म जौनसारी सीमांत गांव खड़काएं चादडाएँ गांव में हुआ। क्योंकि महाभारत कालीन सभ्यता से पूर्व भी यहाँ के लोग जौनसारी बावरी भाषा एवं लिपि का प्रयोग करते थे। तथा अपने पण्डिताई कार्य में इसीलिपि में लिपिवद्ध साँचे एवं बागेई का प्रयोग करते है। जैसा कि हम जानते है कि भाषा अत्यंत परिवर्तनशील होती है। इसका स्वरूप जो प्रारम्भ में रहा वह आज इस रूप में नहीं है वास्तव में अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इस लिपि का जो प्रारम्भिक रूप था वह उसमें कुछ वर्णो की बनावट में अमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। जैसे जौनसार बावर मे सभ्यता का विकास होता गया वैसे-वैसे इस लिपि के वर्गो एवं भाषा में भी अमूल-चूल परिवर्तन होता गया है। आज यह बात प्रमाणित हो चुकी है यदि हम अधिक प्राचीन काल मे न झाँके केवल जौनसार -बावर के 200-300 वर्ष पुराने इतिहास पर नज़र डाले तो ज्ञात होता है कि जौनसार जनजाति के लोग हिन्दी लिखना समझना तो दूर बोलना भी नहीं जानते थे । इसलिए हम कह सकते हैं कि जौनसार बावरी भाषा एवं लिपि का उद्भव एवं विकास इसी पर्वर्ताचल में हुआ है इलिलिये इस लिपि को जौनसार लिपि कहना समीचीन होगा|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. A linguistic study of jaunsari. Dr. Satish (1990) creative publisher New Delhi.
२. Jaunsari dictionary & texts-Dr. Satish (2000) Hindi Bhavan Dumgaun Dehradun .
३. गढ़वाली भाषा एवं उसका साहित्य. डॉ. हरिवत्त भटट शलेष १९७६ उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी सीमिति प्रभाग महात्मा गांधी मार्ग लखनऊ)

४. कुमाउँनी भाषा एवं उसका साहित्य - डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय
५. कश्मीरी भाषा एवं उसका साहित्य-डॉ० शिवन कृष्ण रैण (1972) सम्मार्ग प्रभाग 16 यू० बी० बैंग्लोरोड़ -7
६. जौनसारी-बावरी ज्योतिष ग्रंथ - बागोई-हस्तलिपिबद्ध -अज्ञात
७. जौनसारी-बावरी ज्योतिष ग्रंथ-साँचे-हस्तलिपिवद्ध -अज्ञात
८. जौनसारी-बावरी पण्डवाणी ज्योतिष ग्रन्थ- हस्त लिपिबद्ध-अज्ञात
९. जौनसार-बाबर संक्षिप्त परिचय- के0आर. जोशी
१०. जनश्रुतियों के अनुसार. रतन सिंह जौनसारी के अनुसार, डॉ0 उमाशंकर सतीश के अनुसार, शंकरदत्त उनियाल के अनुसार, देविका चौहान के अनुसार, श्याम दत्त जोशी के अनुसार, श्रीमती बरोदेवी के अनुसार, सेमानी देवी के अनुसार, जगतराम शर्मा के अनुसार, रतिराम शर्मा के अनुसा, नारो देवी के अनुसार, मुन्ना सिंह चौहान के अनुसार, लुइया पण्डित के अनुसार, भजराम शर्मा के अनुसार, एम. आर. सेमवाल आदि के अनुसार
११. जौनसार-बावर का सांस्कृतिक वृहद अध्ययन - रतन सिहं जौनसारी।